Sahitya Manthan
A Peer-Reviewed, Open Access e-journal
ISSN: 2582 6867, Website: http://www.sahityamanthan.in
Year-1, Issue-4, Continuous Issue-4, November-December2020

वैदिकसाहित्य में राष्ट्रिय एकता

रुनिस्मिता प्रीतिपुष्पा
शोधछात्रा(साहित्य-विभाग)
ज.रा.रा.संस्कृत विश्वविद्यालय

राष्ट्र का उन्नति के लिये उस राष्ट्र में रहने वालों में एकता की भावना अत्यन्त आवश्यक है। वैदिक संस्कृति तथा सभ्यता में भी यह बात देखी जा सकती है यथा-**"जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।"**[i]अर्थात् नाना धर्म, भाषाभाषी लोगों को एक साथ मिलजुलकर निवास करना चाहिये। पुनश्च ऋग्वेद में कहा गया है- **"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।"**[ii]अर्थात् हे मनुष्यों ! एक साथ गमन करो, एक साथ मिलकर परस्पर वार्तालाप करो, तुम एक दूसरे के मन को ठीक उसी प्रकार से जानों, जैसे देवगण सभी एक दूसरे को जानते हुये अपना-अपना भाग ग्रहण करते हैं। अतः वैदीक संस्कृति के आधार पर ऋषियों ने सम्पुर्ण ब्रह्माण्ड की साक्षात्कारिणी अपनी अन्तः प्रतिभा से अनुभव कर कुछ ऐसे सिद्धान्तों की स्थापना की थी जो संगठन का मूल आधार है वे हैं- 1.संगमन का सिद्धान्त, 2.संवदन का सिद्धान्त, 3.संमनन का सिद्धान्त।

1.संगमन का सिद्धान्त-

राष्ट्र में ऐक्य भाव की स्थापना के लिये ऋषियों ने जिन सिद्धान्तों की परिकल्पना की थी उनमें प्रथम सिद्धान्त संगमन का सिद्धान्त है। संगमन शब्द का अर्थ है एक साथ गमन करना। इसमें संदेह नहीं की एकसाथ चलना भी एक कला है। अतः जहाँ साथ साथ चलना होगा वहाँ मैत्रीभाव अवश्य होगा, इसलिये वैदीक ऋशियों ने जब संगमन सिद्धान्त की बात करते हैं, तब उनके मन यह दृढ आस्था होती है की भौतिक संगमन निःसंदेह संगठन लाने वाला होगा।

समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने कार्य का सम्पादन उसी प्रकार करें और अपनी जिम्मेदारी समझे, जिस प्रकार गाडी में जुते जाने वाले बैल अपना धुरा खींचे और दूसरा न खींचे तो गाडी वहीं रुक जायेगी, आगे नहीं बढ सकती। अथर्ववेद में स्पष्ट रुप से कहा गया है- अपने अन्दर श्रेष्ठ गुणों को धारण करते हुये समान चित्तवाला होते हुये, कर्म को पूर्णफल प्रदान करने वाला बनाते हुये, एक दूसरे से प्रिय वचन बोलते हुये आगे बढो यथा- **"ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः। अन्यो अन्यस्मै फल्गु वदन्त एत सध्रीचीवान् वः संमनसंस्कृणोमि।।"**[iii] यहाँ मन्त्र में प्रयुक्त संराधयन्तः, सधुराश्चरन्तः, सध्रीचीनान् पद वैदीक ऋशि के संगमन सिद्धान्त की ही व्याख्या करते हैं। विभिन्न कर्म करने वालों को एक सूत्र में बांधने की बात वास्तव में संगमन सिद्धान्त का आधार है यथा- **"सध्रीचीनान् वः संमसस्कृणोनकश्नुष्टीन्त्सवनेन सर्वान्।"**[iv]

वैदिक साहित्य में संगमन सिद्धान्त का उल्लेख कई दृष्टियों को सम्मुख रखकर किया गया मिलता है। संगमन का सिद्धान्त शरीर में सद्गुणों के संयोग पर भी लागू होता है। अथर्ववेद में कहा गया है की मनुष्य आयु

धारण करता हुआ सुन्दर वर्चस् वाला होकर शरीर के साथ संयुक्त रहे यथा-**"आयुर्वसान उप यातु शेशः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः।।"**[v] शरीर के साथ आयु का संयोग या प्राण का संयोग जीवन का आधार है। जैसे शरीर के साथ संयोग होने पर ही व्यक्ति की सत्ता है, उसी प्रकार राष्ट्र रुप शरीर के साथ संयुक्त होकर ही व्यक्ति का उत्कर्ष है। एक अन्य मन्त्र में मृत्यु के बाद भी इस संसार में आकर शरीर के साथ संयुक्त होने की कामना की गई है यथा-**"हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छतां तन्वा सुवर्चाः।"**[vi] राष्ट्र भूमि से प्रेम करने वाले कभी मोक्ष नहीं चाहते। उनकी सदा यही कामना रहती है की वे बार बार अपनी मातृभूमि में जन्मग्रहण करें और इसके चतुर्मुखी विकास के लिये सदैव लगे रहें। ऐसे राष्ट्र भक्तों से आबाद राष्ट्रकभी परतन्त्र नहीं हो सकता। इस प्रकार मृत्यु के बाद ही इस संशार में आकर शरीर के साथ संयुक्त होने की कामना इस राष्ट्रीय भावना की और ही संकेत करती है।

वैदीक ऋषियों के संगमन सिद्धान्त की परिधि बहुत व्यापक है। ज्ञान, विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों का विकास मानव के उत्कर्ष का आधार है। इसलिये वैदीक ऋषि विद्या, ज्ञान आदि श्रेष्ठ गुणों की साथ संगमन की सदा कामना करता है यथा-**"संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि।"**[vii] ज्ञान एवं विद्या से सदैव संयुक्त रहना, कभी उसे वियुक्त न होना, किसी कारण अपनी खोई हुई पूर्व प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना, ये ऐसे भाव है जिनकी वैदीक ऋषि सदा कामना करता रहा है। अथर्ववेद अपनी वियुक्त वस्तु से भी सदा संगमन की कामना करता है यथा-**"पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि।"**[viii]

संगमन सिद्धान्त के पिछे एक यह भावना भी कार्य करती दिखाई पडती है की मनुश्य किसी के पास जाता है तब वह उसे कुछ शिक्षा प्रदान करें। सभा, समिति तथा सज्जनों के साथ संगमन का यही उद्देश्य होता है की मनुष्य वहाँ जाकर अपने श्रेष्ठ गुणों का विकास करें। राष्ट्र में जब व्यक्ति एक दूसरे के साथ संगठित होते हैं, तब यही परस्पर ज्ञानोपलब्धि अभीष्ट होनी चाहिये। अथर्ववेद में कहा गया है की जिसके साथ मेरा संगमन हो वह मुझे अच्छी शिक्षा देवें यथा-**"येन संगच्छा उप मा स शिक्षा चारु वदानि तिरः संगतेषु।"**[ix] अथर्ववेद के एक अन्य मन्त्र में इस बात की इच्छा की गई है कि सभी संगत में सुन्दर मन वाले होकर रहें यथा-**"यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत्।"**[x] संगति में मन का सुन्दर होना आवश्यक है, अन्यथा संगति का कोई फल नहीं। राष्ट्र में एक साथ सुन्दर मन के द्वारा ही विकास अथवा वृद्धि संभव है। संगमन में मन का सुन्दर होना आवश्य क है तभी सु-सह की प्रतिष्ठा हो सकेगी अन्यथा सह-भाव तो होगा, किन्तु सु-सह भाव नहीं हो सकेगा। राष्ट्र की समृद्धि संगमन के द्वारा ही संभव है इसी बात का संकेत ऋग्वेद के वाक् सूक्त में किया गया है यथा-**"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुशी प्रथमा यज्ञियानाम्।"**[xi]

ऋग्वेद में सदा इन्द्र के साथ संगमन की चर्चा की गई है यथा- **"इन्द्रेण संगमामहै।"**[xii]इन्द्र शक्ति का प्रतीक है। राष्ट्र में यदि व्यक्ति शक्तिशाली नहीं होंगे तब राष्ट्र नहीं रह सकता। इसीलिये यजुर्वेद के राष्ट्रगीत में यह कामना की गई है की हमारे राष्ट्र में ऐसे राजन्य उत्पन्न हो जो वीर, धनुर्धर, महारथी तथा योद्धा हो यथा- **"आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इशव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।"**[xiii] इन्द्र के साथ सदा संगमन का अभिप्राय यही है। ऋग्वेद में पूशा के साथ संगमन की कामना की गई है यथा- **"समु पूष्णा गमेमहि।"**[xiv] पूषा पोषण अथवा पुष्टि का प्रतीक है। जिस राष्ट्र

की प्रजा पुष्टि सम्पन्न नहीं होगी वह राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। ऋग्वेद में सूर्य के साथ संगमन की कामना की गई है यथा- **"सूर्यस्य च संभक्तेन गमेमहि।"**[xv] सूर्य वर्चस् तथा तेज का प्रतीक है। राष्ट्र की तेजस्विता के लिये वर्चस् के साथ संगमन आवश्यक है, इसलिये राष्ट्र के ब्राह्मणवर्ग को ब्रह्मवर्चस् युक्त होने की कामना की गई है यथा- **"आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।"**[xvi] ऋग्वेद में सूर्य और चन्द्रमा के संगमन को आदर्श माना गया है। ये दोनों एक साथ अपने अपने मार्ग पर चलते हैं। उनके संगमन के कारण ही सृष्टि में एक व्यवस्था चल रही है। इसी सूर्य और चन्द्रमा के संगमन की तरह मनुष्य भी दान, अहिंसाभाव तथा ज्ञान के साथ चलता हुआ कल्याण प्राप्त कर सकता है यथा- **"स्वसित पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि।।"**[xvii]

2.संवदन का सिद्धान्त-

राष्ट्र में सु-सह भाव की स्थापना के लिये दूसरा सिद्धान्त सह-वदन का सिद्धान्त है। संवदन का शाब्दिक अर्थ है परस्पर एक दूसरे से बातचीत करना। संवदन के अनुपालना का क्षेत्रपरिवार से लेकर सम्पूर्ण विश्व है। अथर्ववेद में पत्नी द्वारा पति के लिये मधुर एवं कल्याणकारी वचन का विधान करता है यथा- **"जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवान्।"**[xviii] दाम्पत्य जीवन की सफलता पति पत्नी के सम्बन्धों पर ही निर्भर है। यदि पति पत्नी के लिये तथा पत्नी पति के लिये कठोर एवं अपशब्द बोले, दाम्पत्य जीवन कभि सुखी नहीं रह सकता। विवाह सूत्र में बन्धे होने पर भी तथा एक दूसरे के साथ रहते हुये भी यदि परस्पर वचन में माधुर्य एवं शिव की भावना नहीं तो दाम्पत्य जीवन में सु-सहभाव की स्थापना नहीं हो सकती। पती पतनी की तरह परिवार में पिता-पुत्र माता-पुत्र, भाई-भाई, बहन-भाई, बहन-बहन, देवर-भावी आदि प्रत्येक युगल सम्बन्धों में संवदन आवश्यक है। इसलिये अथर्ववेद का ऋषि परस्पर कल्याणकारी वचन बोलने का आग्रह करते हैं। भाई भाई से द्वेष, बहन बहन से द्वेष न करें सभी समान व्रत वाला होकर परस्पर कल्याणकारी वचन बोलें यथा- **"मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।"**[xix] है यही पारिवारिक सु-सह का आधार है।

परिवार से आगे बढने पर समाज आता है। समाज में अनेक पेशा वाले लोग होते हैं। कोई बौद्धिक कर्म में लगे होते हैं, कोई सुरक्षा कर्म में, कोई वाणिज्य कर्म में तथा कोई उत्पादन कर्म में। इन्हीं कर्मों के आधार पर चार वर्ण हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। इन वर्णों में संगठित होने पर ही राष्ट्र संगठित रह सकता है। ऋषियों ने स्पष्ट रुपे से कहा है कि हम सभी जनों के प्रति कल्याणकारी वचन बोलें- ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र, स्वजनों तथा परिजनों सब के लिये कल्याणकारी वचन बोलें यथा- **"यथेमां वाचं कल्याणीमा वदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।।"**[xx] अपने लोगों से तो प्रिय वचन व्यक्ति बोलते ही है, अन्य व्यक्तियों से भी प्रिय वचन बोलने का ऋशि का आग्रह है। एक दूसरे के प्रति प्रिय वचन बोलना सु-सह सिद्धान्त का प्रमुख आधार है यथा- **"अन्यो अन्यस्मै बल्गु वदन्त एत।"**[xxi]

3.संमनन का सिद्धान्त-

राष्ट्र में सुसह-भाव की स्थापना के लिये वैदिक ऋषियों ने जिन सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित किया था उनमें एक सिद्धान्त संमनन का सिद्धान्त है। प्रत्येक व्यक्ति का चन्तन उसकी बुद्धि के अनुसार भिन्न पंकार का होता है। इसलिये

यह स्वाभाविक है कि प्रत्येक का चिन्तन एक जैसा न हो। ऋग्वेद के ऋषियों ने इस तथ्य का संकेत एक मन्त्र में करते हैं जिसमें उनका कथन है कि सभी आंख वाले हैं, सभी कान वाले हैं और सभी एक समान्य नाम मनुश्य से संबोधित होते हैं, किन्तु ये बाह्यसमानताओं के होते हुये भी मन की गति में सभी समान नहीं होते। मनुष्यों के मानसिक चिन्तन का धरातल उसी प्रकार भिन्न भिन्न है जिस प्रकार कई सरोवरों का जल भिन्न भिन्न धरातल का होते हैं, कुछ मनुष्य उस सरोवर के समान हैं जिसमें मुख तक जल है, कुछ व्यक्ति उस सरोवर के समान जिसमें काँख तक जल है, दूसरे उस सरोवर के समान है जिसमें स्नान के लिये उपयुक्त जल है यथा- **"अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेश्वसमा बभूवुः। आदध्रास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे।।"**[xxii] इस चिन्तन की भिन्नता के कारण मनुष्यों के दृष्टिकोण में अन्तर आ जाता है, चिन्तन की भिन्नता वैचारिक मतभेद को जन्म देती है और जब वैचारिक मतभेद अधिक प्रबल हो जाता है तब परस्पर संघर्श की स्थिति आ जाती है और यह पारस्परिक संघर्श अन्ततोगत्वा राष्ट्र की एकता में, उसके संगठन में बाधा उत्पन्न करता है। इस वैचारिक मतभेद से उत्पन्न होने वाले संघर्श को रोकने के लिये वैदिक ऋषि सामूहिक मनन की चर्चा करते है जो संमनन सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है।ऋषि उपरोक्त कथित संमनन अथवा संज्ञान रूप मन्त्र को राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक में स्थापित करना चाहते है ताकि वे परस्पर देवताओं की तरह संगठित होकर रहें, कभि विघटित न हो यथा- **"येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः। तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः।।"**[xxiii] यही संमनन का भाव सांमनस्य कहलाता है।

उपरोक्त संगमन, संवदन, संमनन के सिद्धान्त के विश्लेशण से यह बात स्पष्ट है कि वैदिक काल में जो ऋषि थे वे समाज के नेता थे। उन्होंने व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व सबमें सिद्धान्तभूत एकता स्थापित करने का महान प्रयास किया था और जिन सिद्धान्तों की स्थापना की, वे सिद्धान्त यद्यपि उनके अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्र को लक्ष्यकर ही थे, किन्तु ऋषि की वैयक्तिक दृष्टि में समष्टि चेतना समाई होती है, इसलिये वह सिद्धान्त विश्व के सभी परिवारों, समाजों तथा राष्ट्रों के लिये समान रूप से लागू होते हैं।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. अथर्ववेद संहिता (सायणभाष्य)- पं.रामस्वरूप शर्मा गौड, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2011
2. ऋग्वेद संहिता (सायणभाष्य)- विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्सिटीट्यूट, होशियारपुर, 1961
3. गोपथ ब्राह्मण- राजेन्द्रलाल मित्र एवं एच.विद्याभूषण, कलकत्ता 1862
4. यजुर्वेद- श्री राम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली 1969
5. निरुक्त- पं.छज्जूराम शास्त्री, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली 1963
6. मनुस्मृति- हिन्दी अनुवादक, श्री हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस 1952

[i]अथर्व- 12/1/45

[ii]ऋग्- 10/191/2

[iii]अथर्व- 3/30/5

[iv]अथर्व- 3/30/7

[v]अथर्व- 18/2/10

[vi]अथर्व- 18/3/58

[vii]अथर्व- 1/1/4

[viii]अथर्व- 7/10/4

[ix]अथर्व- 7/13/1

[x]अथर्व- 3/20/6

[xi]ऋग्- 1/125/3

[xii]ऋग्- 8/91/4

[xiii]यजु- 22/3

[xiv]ऋग्- 6/54/2

[xv]ऋग्- 7/81/2

[xvi]वा.सं- 22/22

[xvii]ऋग्- 5/51/15

[xviii]अथर्व- 3/30/2

[xix]अथर्व- 3/30/3

[xx]यजु- 22/22

[xxi]अथर्व- 3/30/5

[xxii]ऋग्- 10/71/7

[xxiii]अथर्व- 3/30/4